प्रथम अध्याय

नाटक और नारी-पात्र

भूमिका :

काव्य मानव जीवन की मधूर भावनाओंकी अभिव्यक्तिका श्रेष्ठतम साधन हैं । काव्यभेदों में नाटक जितना रमणीय है उतना ही प्राचीन एवं महत्त्वपूर्ण हैं । भारत और युनान दोनोंही प्राचीन सभ्यताके देशों में नाटक का विकास बहुत प्राचीन कालसे हुआ हैं । संस्कृत में इसे " रूपक " तथा पाश्चात्य साहित्य में इसे ( ) कहते हैं । स्वरूप के आधार पर काव्य या साहित्य के दो भेद किये जाते हैं । श्रव्य काव्य और दृश्य काव्य । श्रव्य काव्य उसे कहतें हैं जो सुना जाए और दृश्य काव्य उसे कहते हैं जो देखा जाए । श्रव्य काव्य में शब्दों के माध्यम से बडी कुशलता से मानसिक चित्र प्रस्तुत किये जाते हैं । इसमें कल्पना पर विशेष बल दिया जाता हैं । इसका रूप विधान अमूर्त रहता हैं । लेकिन दृश्य काव्य में कल्पना को अधिक महत्त्व नहीं दिया जाता । इसका रूप विधान मूर्त होता हैं । इसमें जो कल्पना की कमी रह जाती है उसे अभिनय के व्दारा पूरा किया जाता हैं । नाटक पढा भी जा सकता है । देखा भी जा सकता है । नाटक साहित्य का अत्याधिक महत्त्वपूर्ण एवं समृध्द अंग है ।

साहित्य में नाटक का स्थान :

काव्येषु नाटकं रम्यम् नाटकान्त कवित्वम् ।

संस्कृत के इस विचार के अनुसार नाटक काव्य कला का सर्वश्रेष्ठ अंग माना गया है । इसकी वजह यह है कि नाटक की प्रभावोत्पादक शक्ती वाडमय के अन्य अंगों की अपेक्षा अधिक स्थायी गहरी एवं व्यापक होती है । इसमें हम वास्तविकता का अनुभव करते हैं । सामान्य जन के लिए मूर्त और प्रत्यक्ष जितना बोधगम्य होता है उतना अमूर्त नहीं । नाटक साधंर जनता के अधिक नजदीक होने के कारण उसका अपना विशिष्ठ स्थान है । शास्त्रों और कलाओं की दृष्टि से भी नाटक का महत्त्व समस्त काव्यांगों से अधिक है । गौर से देखा जाए तो यह बात यकीनन स्पष्ट है इस जहान में ऐसी कोई चीज नहीं है जिसका प्रदर्शन नाटक

में न हो सके । नाटयशास्त्र में स्पष्ट कहा गया है –

" न स योगो न तत्कर्म नाटये स्मिन यन्न दृश्यते ।
सर्व शास्त्राणि, शिल्पाणि, कर्माणि विविधानिच । "[1]

इसका अर्थ यह है कि योग, कर्म, सम्पूर्ण साहित्य, सारे शिल्प और संसार के विविध कार्योंमें कोई ऐसा नहीं है जो नाटक मे न पाया जाए । राजनाम शर्मा के मतानुसार, "इसमें वास्तविकता का अनुभव जीते जागते साधनों व्दारा किया जाता है । इसप्रकार लोकाहित तथा लोकरंजन के उद्देश को लिए हुए, शिक्षित – अशिक्षित सब का समान रूप से मनोरंजन करनेवाला तथा विविध कलाओं से संयुक्त होने के कारण नाटक साहित्य का एक अत्यधिक महत्त्वपूर्ण अंग है ।"[2] डॉ.रामकुमार वर्मा के शब्दों में " नाटक साहित्य का साकार रूप हैं । वह साहित्य के अन्य अंगो की अपेक्षा जन साधारण के सबसे अधिक निकट है । नाटक में जीवन की वास्तविकता, सौन्दर्य – विधायिनी कल्पना के रंगो से पूर्ण होकर रंगमंच पर अवतरित होती है जिससे उसमें जीवन की झलक मिलती है । दर्शक वर्ग रंगमंचपर ऐसी घटनाएं घटित होते देखता है और उसके परिणाम से लाभ उठाने का यत्न करता है । साहित्य के अन्य अंगों की (कविता, उपन्यास, कहानी आदि) को रंगमंच का यह वरदान प्राप्त नहीं है, इसी कारण साहित्य के अन्य रूप अपना प्रभाव जन साधारण पर डालने में नाटक की भाँति सफल नहीं हो पाते । प्रभावोत्पादकता की दृष्टि से नाटक साहित्य का सब से अधिक सबल माध्यम है ।"[3]

डॉ.गजानन सुर्वे का कहना हैं, "नाटक साहित्य की विशिष्ट तम विधा है । नाटक आँखों से देखने की और हृदय से परखने की चीज है । नाटक मानव जीवन की झाँकी मूर्त रूप से प्रस्तुत करनेवाला साहित्य का सर्वोत्कृष्ठ रूप है ।"[4] नाटक साहित्य की समस्त विधाओं में सर्वाधिक सशक्त एवं महत्त्वपूर्ण विधा है ।

पात्र : शब्द – प्रयोग

" पात्र " शब्द संस्कृत की " पा " धातु के साथ " ष्ट्रन " प्रत्यय युक्त करने से व्युत्पन्न होता है । पात्र का अर्थ है पीने का बर्तन, प्याला, गिलास, जलाशय, योग्य व्यक्ति, अभिनेता, नाटक का पात्र, नदी का पात्र इ.[5] मानक हिन्दी कोश तिसरा खण्ड में पात्र के निम्नलिखित अर्थ भी दिये गये हैं । (1) उपन्यास, कहानी, काव्य, नाटक आदि में वे व्यक्ति जो कथा वस्तु की घटनाओं के घटक होते हैं औस जिनके क्रिया–कलाप या चरित्र से कथा – वस्तु की सृष्टि और परिपाक होता है । (2) नाटक में वे

अभिनेता या नट जो उक्त व्यक्तियों की वेश – भुषा आदि धारण करके उनके चरित्रों का अभिनय करते हैं । अभिनेता[6] ।

साहित्यिक समीक्षा में " पात्र " के साथ " चरित्र " शब्द का भी प्रयोग किया जाता है । सामान्यतया पात्र और चरित्र में कोई फरक नही हैं । साहित्य में विशेषत: नाटक के संदर्भ में चारित्र्य अथवा विशिष्ट व्यक्तित्व का अधिकारी व्यक्ति " पात्र " कहलाता है । नाटक के नायकक अथवा केंद्रिय पात्र से लेकर गौण एवं नगण्या सभी अभिकर्ता मूलत: पात्र होते है ।[7]

साहित्य में पात्र का महत्त्व :

साहित्य मानव की सृष्टि है और साहित्य का केन्द्रबिंदु भी मानव है । अत: साहित्य में पात्र के रूप में मानव का ही चित्र अंकीत किया जाता है । साहित्य के अनेक रूप माने गये हैं । प्रबंध काव्य, नाटक, उपन्यास, कहानी आदि विधाओं में पात्र का स्थान किसी न किसी रूप में अपना अस्तित्व धारण किये रहता है । विना पात्र साहित्य का सृजन असंभव है । यह ठीक है कि आजकल पात्र को साहित्यकार विविध रूपों में रूपायित करता है और अच्छे बूरे सभी रूपोंमें उसे शब्दबध्द करता है । वास्तव में साहित्य में पात्र ही प्रमुख रहते हैं । अर्थात पात्रोंमे शील, स्वभाव, आचार विचार, आहार व्यवहार आदि को साहित्यकार अपनी प्रतिभा के व्दारा शब्दबध्द करता है । देश काल परिस्थिति के अनुसार साहित्य में पात्रों की सृष्टि की जाती है । उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द जी ने उपन्यास की परिभाषा करते समय पात्र को ही सर्वाधिक महत्त्व दिया है । उनका कथन है, " मैं उपन्यास को मानव – चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ । मानव – चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्योंको खोलना ही उपन्यास का मूलतत्त्व है ।"[8] भारतीय साहित्य के आधार पर डॉ. रामशंकर त्रिपाठी ने साहित्य में पात्र का स्थान और महत्त्व विशद करते हुए उचित ही लिखा है " भास के उदयन और वासवदत्ता, कालिदास के दुष्यन्त और शकुंतला, भवभूती के राम और सिता, प्रसाद के स्कन्द और देवसेना, शरश्चंद्र के सतीश और सावित्री, प्रेमचन्द के होरी और धनिया, आज्ञेय के शेखर और शशी (आदि – आदि) का कवि – कल्पित जीवन केवल लेखक की कला – दृष्टि की ही सृष्टि नहीं है, उसपर समग्र जातीय जीवन की सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और राष्ट्रीय चेतना का भी अन्तरीण प्रभाव है । इसलिए साहित्य में पात्र का स्थान असाधारण महिमा मण्डित है ।"[9] उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि साहित्य में पात्रों का स्थान निश्चय ही महत्त्वपूर्ण है ।

नाटक में पात्र और चरित्र – सृष्टि :

नाटक साहित्य की एक महान विधा है । नाटक पढने और देखने की चीज है । नाटक और अन्य साहित्य की विभाजन रेखा यह है कि नाटक को रंगमंच का वरदान है जो अन्य साहित्य विधाओं को नहीं है अत: अन्य साहित्य की अपेक्षा नाटक प्रभावान्विती की दृष्टि से अपना विशिष्ट स्थान रखता है । नाटक मानवीय क्रिया व्यापार से सम्बध्द है और वहीं नाटकीय क्रिया व्यापार ही चरित्र की बाहय और आंतरिक क्रिया शीलता को प्रकट करता है । आंग्ल समीक्षक हडसन का कथन है कि " किसी नाटय कृति की महानता का मानदण्ड उसकी चरित्र – सृष्टि मात्र है ।"[10]

डॉ.सूरजकान्त शर्माने भी नाटक में पात्र और चरित्र – सृष्टि का महत्त्व नि:संकोच रूप में स्वीकार हैं । उनका कहना है " न तो चरित्र के अभाव में चरित्र – चित्रण की कल्पना की जा सकती है और न ही चरित्र – चित्रण के अभाव में चरित्र की सर्जना । अत: चरित्र तथा चरित्र – चित्रण की कल्पना नाटक के लिए अनुस्यूत है ।"[11] जहाँ नाटयाचार्य भरतमूनिने नेता शब्दका प्रयोग किया है वहाँ अरस्तू ने " एथोस" शब्द का प्रयोग चरित्र के लिऐ किया है । अरस्तू का कथन है कि " चारित्र्य उसे कहतें है जो किसी व्यक्तिकी रूचि – विरूची का प्रदर्शन करता हुआ नैतिक प्रयोजन को व्यक्त करे । "[12] नाटक में पात्र का महत्त्व नि:संदेह होता है लेकिन यह भी ध्यानमें रखनेकी जरूरी है उसका चारित्र्ययुक्त होना उससे और महत्त्वपूर्ण है । वस्तुत: नाटक में पात्रों का चारित्र्य ही अभिव्यक्त होता है और इस दृष्टि से चरित्र शब्द का औचित नि:संदेह महत्त्वपूर्ण है इस संदर्भ में जे.ए.स्टाइन के विचार मननीय है उनका कथन है " "नाटकगत पात्र केवल शाब्दिक अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं होता, नाटककार उसे नाटक में कथंवस्तु, रंगमंच और प्रेक्षक वर्ग से सम्बध्द कर उसके अस्तित्व को सिध्द करता है । उसके जीवन का प्रमाण देता है तभी वह पात्र चरित्र की संज्ञा से अभीहित किया जा सकता है ।"[13] प्रत्येक पात्र का अपना एक निश्चीत व्यक्तित्व होता है । आलपोर्ट ने व्यक्तित्व की परिभाषा इस प्रकार की है " व्यक्तित्व व्यक्ति के अंतर्गत उन मनोदैहिक गुणोंका गत्यात्मक संगठन है जिनपर उसके वातावरण के प्रति होनेवाले विशिष्ठ अभियोजन निर्भर करते है ।"[14] व्यक्तित्व के बारेमें जैनेंद्रकुमार का कथन है कि " वस्तुत: व्यक्तित्व पात्र के भीतर की उस अंतरंग मानस शक्ति को कहते है जिससे वह प्रेक्षकों की रूचि और कल्पना को बांध लेता है और ऐसे हर पात्र के प्रति दर्शकोंके मन में देखने की एक चाह और उत्सुकता बनी रहती है ।"[15]

पात्र और मनोविज्ञान :

नाटक में चरित्र – सृष्टि का विशेष महत्त्व इसीलिए भी है कि वह मुख्यत: मनोविज्ञान पर अधृत होता है । मनुष्य का चारित्र्य उसके क्रिया व्यापारों से निर्मित होता है। फ्रायड ने मन की तीन अवस्था मानी है । अहं ( ), इदं ( ), परं अहं ( ) । वास्तवमें मनुष्य के मनोविकारोंका विकास उसके चरित्र में किसी न किसी रूप में होता ही रहता है । क्या सुख क्या दुख:? क्या ईर्षा क्या असूया ? क्या आनंद क्या उल्हास ? ये सब मनोविकार मानव की मनस्थितीयों के द्योतक है और कोई भी सजक नाटककार मानव मनकी स्थितीयोंको किसी न किसी रूप में अपने पात्रों के व्दारा अभिव्यक्त करता है । मानव के चेतन, अचेतन, अवचेतन स्थितीयों का उद्घाटन नाटककार अव्यश्य करता है । लॉजस एग्री ने चरित्र निर्माण में तीन आयामों को प्रमुखता दी है । (1) शारीरिक आयाम, (2) सामाजिक आयाम और (3) मनोवैज्ञानिक आयाम ।

मनोवैज्ञानिक आयाम के अंतर्गत उन्होंने निम्नलिखित बातें प्रस्तुत की है ।[16]

(क) यौन – जीवन नैतिक स्वर

(ख) वैयक्तिक महत्त्वाकांक्षा

(ग) नैराश्य, प्रमुख निराशाएँ ।

(घ) स्वभाव (कॉलरिज, ईजी–गोईज, पेसी मिस्टिक)

(ड) जीवन के प्रति दृष्टिकोन

(च) जटिलताएँ : प्रेमबाधा, अन्धविश्वास आदि

(छ) बाह्योन्मुखता, अजरोन्मुखता, उदयोन्मुखता

(ज) योग्यताएँ, भाषाएँ, विभाशाएँ, ज्ञान – विज्ञान, कला – कौशल

(झ) गुण, कल्पना, निर्णय रूचि ।

पात्र और चरित्र – सृष्टि करते समय साहित्यकार को उपर्युक्त बातें ध्यान में रखने की जरूरती हैं । उपर्युक्त तीन आयाम चरित्र निर्माण का ढांचा है और उसी ढांचे का परिज्ञान साहित्यकार को होना चाहिए और उसके आधार पर उसे पात्र की सृष्टि करनी चाहिए ।[17]

(3) **धृष्ट नायक :** जो प्रेम में अपराधी होने पर भी नि:शंक रहता है । अपनी प्रधान महिषि अन्य नायिकों से तिरस्कृत होने पर भी लज्जित नहीं होता । स्पष्टता और दोषों के प्रकट होने पर भी झूठ बोल देता है । वह धृष्ट नायक है । जिस नायक के अंगोंमें अन्य नायिकाओं के प्रति किये गये प्रेम चिन्ह या सुरत चिन्ह स्पष्ट प्रकट होते है ।

(4) **शठ नायक :** प्रथम प्रेयसी से छुपाकर अन्य प्रेयसी से प्रेम करनेवाला संल्लज्ज नायक शठ कहलाता हो अथवा जो नायक वस्तुत: एक नायिका से प्रेम करे किंतु बाहर से दोनों नायिकाओं के प्रति प्रेम प्रकाशित करें और छिपे रूप से दुसरी नायिका का अप्रिय करें वह शठ नायक कहलाता है ।

प्रतिनायक : प्रतिनायक नायक का प्रतिव्दन्व्दि होता है । वह धीरोध्दत्त हुऐ भी छली, लोभी, पापाचारी होता है । वह आमतौरपर नायक के व्दारा पराजित होता दिखाया जाता है । जैसे रावण या दुर्योधन ।

नायक के सहाय्यक पात्र :

नायक के सहाय्यक पुरूष – पात्र भी होते हैं । जैसे पीठमर्द, विदुषक, वीट ।

पीठमर्द : नायक की सहाय्यता करनेवाले तथा प्रासंगिक कथाके प्रमुख पात्र को "पीठमर्द" कहते है । यह नायक की अपेक्षा अधिक हेय गुणवाला होता है और सदैव उसकी सहाय्यता में तत्पर होता है ।

विदूषक : संस्कृत नाटकोंमें एक विशेष पात्र हास्य रस की सृष्टि के लिये रखा जाता था जिसे "विदुषक" कहा जाता है । वह प्रा:हा ब्राम्हण ही होता है । वह अपनी वेशभुषा, बोलचाल और व्यवहार से नायक का मनोविनोद करता है । अवसर पडने पर उसे परामर्श भी देता है । वह किसी विशिष्ट कला का विशेषज्ञ होता है । उस कला से नायक का मनोरंजन करता है ।

वीट : नायक को गीतादि विधाओंसे प्रसन्न करनेवाला वीट कहा जाता है । विदूषक समकक्ष यह पात्र होता है । अपनी कला की सहायता से एवं अनोखी अदासे वह नायक का दिल बहलाता है ।

नायक के भेद

(अ) संस्कृत आचार्योंने शीलपर आश्रित नायकों के चार भेद निर्धारीत किय हैं । धीरोदात्त, धीरललित, धीरप्रशान्त और धीरोध्दत ।

(1) **धीरादात्तः** इसमें शक्ति, क्षमा, स्थिरता, दृढता, गंभीरता, आत्मसम्मान तथा उदारता आदि गुण होते हैं । इनके सब से अच्छे उदाहरण मर्यादा पुरूषोत्तम राम और धर्मधुरीण युधिष्ठिर हैं

(2) **धीरललित :** श्रृंगारप्रिय सुखान्वेषी, कलाविज्ञ, कोमल और स्थिर चित्तवाला होता है । इसमें ललित गुणोंकी प्रधानता होती है । श्रृंगार प्रधान नाटकोंमें ही ऐसे नायक रहते है । जैसे शकुंतला का दुश्शान्त या रत्नावली का वत्सराज ।

(3) **धीरप्रशान्त :** यह संतोषी, शांतीप्रिय और सुखान्वेषी होता है । क्षत्रियों में ये गुण नहीं पाये जाते इसलिए ऐसा नायक ब्राम्हण या वैश्य होता है । "मालती – माधव" नाटक में माधव और मृच्छकटिक में चारूदत्त ऐसे ही नायक है ।

(4) **धीरोध्दत :** यह मायावी, आत्मप्रशंसा परायण, धोखेबाज और चपल होता है । इसमें धीरोदात्त के नायक के विपरीत गुण पाये जाते है – जैस रावण । दुर्गुणोंके कारण कुछ आचार्य ऐसे व्यक्तियोंको नायक नहीं मानते । स्पष्ट है नाटयशास्त्र में नायक के चारित्र्य में शील और धीर की अनिवार्य विशेषाता स्वीकार की गयी है । धीरता ही पात्र को नायक – पद की मर्यादा से संपन्न करती है ।

(आ) नायिका के प्रति प्रणय व्यवहार के आधार पर नायको के चार भेद माने गये है । दक्षिण, अनुकुल, धृष्ट, शठ ।

(1) **दक्षिण नायक :** एक से अधिक पत्नियाँ होने पर भी पूर्व पत्नी के प्रति सहृदय प्रेम करनेवाला दक्षिण नायक कहलाता है । वह एक से अधिक प्रेम करते हुऐ अन्यों से सामान्य प्रेम रखता है जैसे रत्नावली नाटिका में वत्सराज उदयन पदमावती को पत्नी बना लेता है फिर भी वासवदत्ता से उसका प्रेम पूर्ववत बला रहता है ।

(2) **अनुकूल नायक :** एक ही प्रेयसी अथवा पत्नीमें अनुरूक्त रहता है । श्री रामचंद्र जी अनुकूल नायक है ।

नाटक में पात्र परिकल्पना :

नायक – नायिका – विचार :

नाटक में नायक – नायिका परिकल्पना के बारेमें भारतीय और पाश्चात्य नाटयाचार्यनि काफी विचार किया है ।

(क) भारतीय विचार धारा :

भारतीय आचार्यनि नाटक के तीन प्रमुख तत्त्व माने हैं – वस्तु, नेता और रस[23] यहाँ वस्तु का सम्बन्ध नाटक की कथावस्तु से है । तथा नेता का सम्बन्ध नाटक के पात्र और चरित्र – सृष्टि से है । रस का सम्बन्ध मुख्यतया नाटयानुभूति अर्थात नाटय रस से है । हमारा विवेच्य विषय है नाटक में पात्र और चरित्र – सृष्टि अतः इसपर ध्यान केंद्रित करके कुछ बातें बतायी जा सकती है ।

नाटक – परिकल्पना

नाटक के प्रमुख और केंद्रिय पात्र को नेता या नायक कहाँ जाता है । यहीं मूल नाटकीय कथानक को विभिन्न स्थितियों के माध्यम से अन्तिम " फल " या " कार्य " की ओर ले जाता है । अन्तिम फल की उप्लब्धि भी इसी को ही होती है । भारतीय नाटयशास्त्र की दृष्टि से नेता या नायक का विशेष महत्व माना जाता है । आचार्य भरत मुनि ने नाटक के बारे में बताया है कि " जो बहुत से पुरूषों का अग्रणि हो उसे नायक कहते हैं । तथा जो विपत्ति और उन्नति में सुख का अनुभव करता हैं तथा जो और दोनों दशाओं में अपनी श्रेष्ठता बनाये रखाता है वहीं नायक हैं ।[24] प्राचीन आचार्यों ने इसके स्वरूप और कार्यकी प्रकल्पना भी अत्यंत उदात्त रूप से की है इसकी कुछ निश्चित कोटीयाँ और निश्चित गुण माने गये है । आदर्श प्रधानता के कारण नायक के जिन आदर्श गुणों की कल्पना की गयी है वे इस प्रकार है । नायक नम्र, सुन्दर, त्यागी, कुशल, प्रियभाषी, भाषण पटु, शुध्द स्वभाव, लोकप्रिय, स्थिर चित्त, कुलीन, युवा, साहसी, बुध्दिमान, कलाकार, शुरवीर, तेजस्वी, धीर स्वभाव, तीव्र स्मृतीमान, धार्मिक, शास्त्रज्ञ और सुरूचि सम्पन्न होना चाहिए ।[25]

नाटक की सफलता की संभावना उतनी ही अधिक होती है ।[19]

इसमें संदेह नहीं कि नाटकीय पात्रोंके चारित्रिक विकास में व्दन्व्द का संघर्ष का महत्त्व निर्विवाद है । डॉ.रामकुमार वर्मा का कथन है " समस्या को जब विविध पात्रों अथवा घटनाओं के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है तब अंर्तव्दन्व्द और संघर्ष की स्थिती आती है ..... जीवन के वास्तविक चित्रण के लिए नाटयव्दन्व्द की अपेक्षा अंर्तव्दन्व्द अधिक महत्त्वपूर्ण है । परिस्थितीयों का बाहयव्दन्व्द कुतुहल को जनम देता है और अंर्तव्दन्व्द पात्र के मानसिक विस्तार का परिचय देता है ..... अंर्तव्दन्व्द मनोविज्ञान के क्रोढ में पोषित होता है ।[20]

पात्र : भाषा और संवाद

इसमें संदेह नहीं कि भाषा और संवाद नाटक के प्राणतत्त्व हैं । नाटक के पात्रों की चरित्र – सृष्टि में भाषा और संवाद विशेष रूप से सहायक होते हैं । किंबहुना नाटककार भाषा और संवादोंके माध्यम से ही पात्रों के चरित्रों का उदघाटन करता है । पर्सियल वाइल्ड ने नाटक में संवादों का स्विकार किया है और बताया है कि संवाद नाटककार एवं दर्शक के मध्य सेतू का कार्य करता है । आचार्य हजारी प्रसाद व्दिवेदीजी ने यह बताया है कि वस्तुतः नाटककार (पात्रों में परस्पर) जो बातचीत कराता है उसका उद्देश्य चरित्र के भीतरी मनोवेगों और वास्तविक स्वभंर को दिखाना होता है ।[21]

पात्र : रंगमंचीय आयाम

रंगमंच नाटक का एक महत्त्वपूर्ण ऐसा तत्त्व है जिसमें नाटककार, निर्देशक, अभिनेता रंगमंचीय विविध उपकरण तथा – रंगदीपन या प्रकाश योजना, ध्वनि संकेत, संगीत इत्यादी आदि समुचित सम्मिलन रहता है । नाटककार नाटक की कथा वस्तु के साथ ही साथ पात्र की चरित्र – सृष्टि करता है । नाटककार सर्व प्रथम नाटक में पात्रों का आयोजन करता है । और तत्पक्षात वह पात्र रंगमंचपर अभिनेता के रूप में प्रकट होता है । पात्र की वेश भूषा, गतीशीलता, वाणी को अभिनेता ही साकार रूप देता है । जिसकी वजहसे नाटककार व्दारा शब्दोंमें अंकीत पात्र अभिनेता के अभिनय से रंगमंच पर सजीव रूप धारण करता है और दर्शक गण उससे प्रभावित होता है । इस प्रकार नाटककार का शब्दबध्द पात्र अभिनेता के माध्यम से रंगमंच पर अपनी अर्थवक्ता प्रकट करता है । " नाटय रचना में जितना महत्त्व लेखक की चरित्र – सृष्टि का होता है रंगमंच की प्रक्रिया में अभिनेता की भी महत्त्वपूर्ण और सार्थक भूमिका होती है । रंगमंच पर पात्र का चारित्र्य जितने सहज और प्रभावपूर्ण ढंग से उभरेगा वह पात्र उतना ही जीवंत और व्यक्तित्त्व युक्त होगा

पात्र और व्दन्व्द :

नाटक में पात्रों के चरित्र में व्दन्व्द एवं संघर्ष की स्थिति महत्त्वपूर्ण मानी जाती है । मनुष्य संवेदनशील प्राणी है । इसलिए उसकी संवेदना प्रसंग और परिस्थितीवश उसके कार्यव्यापारों तथा मानसिक संघर्ष व्दारा प्रकट होती है । नाटक की चरित्र – सृष्टि में पात्रों के चारित्रिक विकास में संघर्ष और व्दन्व्द एक अनिवार्य स्थिति मानी जाती है । किसी भी सफल नाटक में पात्रों की मन:स्थिती को अर्न्तव्दन्व्द को विशेष महत्त्व दिया जाता है । नाटक मंचपर खेला जाता है । इसीलिए पात्रों के क्रिया कलाप और उनका अंर्तव्दन्व्द अपना विशेष महत्त्व रखता है । क्योंकि उसीकारण ही दर्शक पात्रों का अभिनय देखकर प्रभावित होते हैं । मानव जीवन में किसी न किसी रूप में विरोध या विरोधाभास दिखायी पडता है और यह विरोध या विरोधाभास नाटककार पात्रोंके क्रिया कलापों और मानसिक व्दव्न्द के व्दारा अभिव्यक्त करता है । संघर्ष या व्दन्व्द का आधार पात्रों का चरित्र ही है । सारे संघर्ष का केन्द्रबिंदु मानव चरित्र ही है । संघर्ष के चार प्रकार माने गये हैं ।

(1) मनुष्य का समाज से संघर्ष

(2) मनुष्य का प्रकृति से संघर्ष

(3) मनुष्य का मनुष्य से संघर्ष तथा

(4) मनुष्य का स्वयं से संघर्ष (अंर्तव्दव्न्द)

इसमें संदेह नहीं की यह संघर्ष पात्रों के चरित्र – सृष्टि का विकास करने में सहायक होता है । इस संदर्भ में " एग्री " का कथन समीचित है । "संघर्ष की अवस्थिति मानव वर्ग का प्रतिनिधित्व करनेवाले पात्रों के चरित्र में ही हो सकती है । नाटकगत प्रत्येक संघर्ष का व्यवहार चरित्र को ध्यान में रखकर होना चाहिए ।"[18]

व्दन्व्द के मुख्यतया दो रूप होते हैं । (1) बाहय और (2) आंतरिक । किसी भी देशकाल परिस्थिती का प्रभाव जब पात्र पर पडता है तब पात्र के चारित्र्य में बाहरी तौर से जो व्दन्व्द दिखाई पडता है वह उसका बाहय रूप है । आंतरिक व्दन्व्द का घनिष्ट सम्बध्द पात्र की मनोदशा से ही अधिक रहता है । आंतरिक व्दन्व्द पात्र के मनोविज्ञान के चित्रण की दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण होते हैं और इसीलिए वह नाटक का प्रमुख तत्त्व भी माना जाता है " जितना अधि व्दन्व्द नाटकीय पात्रोंमें होता है ।

नाटक की सफलता की सम्भावना उतनी ही अधिक होती है। "[19]

इसमें संदेह नहीं की नाटकीय पात्रों के चारित्रिक विकास में द्वंद्व का संघर्ष का महत्त्व निर्विवाद है। डॉ. रामकुमार का वर्मा का कथन है – " समस्या को जब विविध पात्रों अथवा घटनाओं के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है तब अंतर्द्वंद्व और संघर्ष की स्थिति आती है। जीवन के वास्तविक चित्रण के लिये नाट्यद्वंद्व की अपेक्षा अंतर्द्वंद्व अधिक महत्त्वपूर्ण है। परिस्थितियों का बाह्य द्वन्द्व कुतुहल को जन्म देता है और अंतर्द्वंद्व पात्र के मानसिक विस्तार का परिचय देता है। ... अंतर्द्वंद्व मनोविज्ञान के ओढ़ में पोषित होता है। "[20]

पात्र : भाषा और संवाद :

इसमें संदेह नहीं की भाषा और संवाद नाटक के प्राणतत्त्व है। नाटक के पात्रों की चरित्र-सृष्टि में भाषा और संवाद विशेष रूप से सहाय्यक होते हैं। किंबहुना नाटककार भाषा और संवादों के माध्यम से ही पात्रों के चरित्रों का उद्घाटन करता है। पर्सियल वाइल्ड ने नाटक में संवादों का स्वीकार किया है और बताया है कि संवाद नाटककार एवं दर्शक के मध्य संतु का कार्य करता है।

आचारी हजारीप्रसाद द्विवेदी जी ने यह बताया है कि वस्तुतः नाटककार (पात्रों में परस्पर जो बातचीत कराता है उसका उद्देश्य चरित्र के भीतरी मनोर्वर्गी और वास्तविक स्वभाव को दिखाना होता है।) "[21]

पात्र : रंगमंच आयाम

रंगमंच नाटक का एक महत्त्वपूर्ण ऐसा तत्त्व है जिसमें नाटककार, निर्देशक, अभिनेता, रंगमंचीय विविध उपकरण तथा रंगदीपन या प्रकाश योजना, ध्वनिसंकेत, संगती इ.। आदि सम्मुचित सम्मिलन रहता है। नाटककार नाटक की कथावस्तु के साथ ही साथ पात्र की चरित्र-सृष्टि करता है। नाटककार सर्वप्रथम नाटक में पात्रों का आयोजन करता है और तत्पश्चात वह पात्र रंगमंच पर अभिनेता के रूप में प्रकट होता है। पात्र की वेशभूषा, गतिशीलता, वाणी को अभिनेता ही साकार रूप देता है। जिसकी वजह से नाटककार द्वारा शब्दों में अंकीत पात्र अभिनेता के अभिनय से रंगमंचपर सजीव रूप धारण करता है। और दर्शक गण उससे प्रभावित होता है। इसप्रकार नाटककार का शब्दबद्ध पात्र अभिनेता के माध्यम से रंगमंचपर अपनी अर्थवत्ता प्रकट करता है। " नाट्य रचना में जितना महत्त्व लेखक की चरित्र-सृष्टि को होता है, रंगमंच की प्रक्रिया में अभिनेता की भी महत्त्वपूर्ण और सार्थक भूमिका होती है। रंगमंचपर पात्र का चारित्र्य जितने सहज और प्रभावपूर्ण ढ़ंग से उभरेगा वह पात्र उतना ही जीवंत और व्यक्तित्व युक्त होगा। "[22]

नाटक में पात्र परिकल्पना :

नायक–नायिका विचार :

नाटक में नायक–नायिका परिकल्पना के बारे में भारतीय और पाश्चात्य नाट्यचार्यों ने काफी विचार किया है।

भारतीय विचारधारा :

भारतीय आचार्यों ने नाटक के तीन प्रमुख तत्त्व माने हैं – वस्तु नेता और रस। [23] यहाँ वस्तु का सम्बन्ध या नाटक की कथावस्तु से हैं। तथा नेता का सम्बन्ध नाटक के पात्र और चरित्र सृष्टि से है। रस का सम्बन्ध मुख्यतया: नाट्यानुभूति अर्थात नाट्यरस से हैं। हमारा विवेच्य विषय है नाटक में पात्र और चरित्र सृष्टि अत: इसपर ध्यान केंद्रित करके कुछ बात बतायी जा सकती है।

नायक–परिकल्पना :

नाटक के प्रमुख और केंद्रिय पात्र को नेता या नायक कहा जाता है। यही मूल नाटकीय कथानक को विभिन्न स्थितियों के माध्यम से अंतिम " फल " या " कार्य " की ओर ले जाता है। अन्तिम फल की उपलब्धि भी इसी को ही होती है। भारतीय नाट्यशास्त्र की दृष्टि से नेता या नायक का विशेष महत्त्व माना जाता है। आचार्य भरतमुनि ने नाटक के बारे में बताया है कि, " जो बहुत से पुरूषों का अग्रणी हो उसे नायक कहते हैं तथा जो विपत्ति और उन्नति में सुख का अनुभव करता है और दोनों दशाओं में अपनी श्रेष्ठता बनाये रखता है वहीं नायक है। "[24] प्राचीन आचार्यों ने इसके स्वरूप और कार्य की पकल्पना भी अत्यंत उदात्त रूप से की है। इसकी कुछ निश्चीत कोटियाँ और निश्चित गुण माने गये हैं। आदर्श प्रधानता के कारण नायक के जिन आदर्श गुणों की कल्पना की गयी है वे इसप्रकार है नायक नम्र, सुन्द, त्यागी, कुशल, प्रियभाषी, भाषणपटु, शुद्धस्वभाव, लोकप्रिय, स्थिरचित्त, कुलीन, युवा, साहसी, बुद्धिवान, कलाकार, शूरवीर, तेजस्वी, धीर स्वभाव, तीव्र स्मृतिमान, धार्मिक शास्त्रज्ञ और सुरूचिसंपन्न होना चाहिये। [25]

अ) नायक के भेद :

संस्कृत आचार्यों ने नायक के शील पर आश्रित नायकों के चार भेद निर्धारित किये हैं – धीरोदात्त, धीरललित, धीर प्रशान्त और धीरोद्धत।

1) धीरोदात्त : हम में शक्ति, क्षमा, स्थिरता, दृढता, गम्भीरता, आत्मसम्मान, तथा उदारता आदि गुण होते हैं। इनके सब से अच्छे उदाहरण मर्यादा पुरूषोत्तम राम और धर्मधुरीण युधिष्ठिर हैं।

2) **धीरललित :** यह श्रृंगारप्रिय, सुखानवेशी, कलाविज्ञ, कोमल और स्थिर चित्तवाला होता है। इसमें ललित गुणों की प्रदानता होती है। श्रृंगार प्रदान नाटकों में ही ऐसे नायक रहते हैं। जैसे – शकुंतला का दुष्यंत या रत्नावली वत्सराज।

3) **धीरप्रशान्त :** यह संतोषी, शान्तिप्रिय और सुखान्वेषी होता है। क्षत्रियों में ये गुण नहीं पाये जाते इसलिये ऐसा नायक ब्राम्हण या वैश्य होता है। " मालती–मालव " नाटक में माधव और मृच्छकटिक में चारूदत्त ऐसे ही नायक हैं।

4) **धीरोद्धत :** यह मायावी, आत्मप्रशंसा परायण, धोखेबाज और चपल होता है। इसमें धीरोद्धात नायक के विपरीत गुण पाये जाते हैं। जैसे – रावण दुर्गुणों के कारण कुछ आचार्य ऐसे व्यक्तियों को नायक नहीं मानते। स्पष्ट है नाट्यशास्त्र में नायक के चारित्र में शील और धीर के अनिवार्यता स्वीकार की गयी है। धीरता ही पात्र को नायक – पत की मर्यादा से संपन्न करती है।

आ) श्रृंगार रस सम्बन्धि नायक के भेद :

आ) नायिका के प्रति प्रणय व्यवहार के आधार पर भेद।

नायिका के प्रति प्रणय व्यवहार के आधार पर नायकों के चार भेद माने गये हैं।

दक्षिण, अनुकूल, दृष्ट, शठ।

1) **दक्षिण नायक :** एक से अधिक पत्नीयाँ होने पर भी पूर्व पत्नी के प्रति सहृदय प्रेम करनेवाला दक्षिण नायक कहलाता है। वह एक पर अधिक प्रेम करते हुए अन्यों से सामान्य प्रेम रखता है। जैसे – रत्नावली नाटिका में वत्सराज उदयन पद्मावती को पत्नी बन लेता है फिर भी वासवदत्ता के प्रति उनके दिल में प्यार पूर्ववत बना रहता है।

2) **अनुकूल नायक :** अनुकूल नायक एक ही प्रेयसी अथवा पत्नि में अनुरूप्त रहता है। जैसे श्रीरामचंद्र जी अनुकूल नायक है।

3) **धृष्ट नायक :** जो प्रेम में अपराधी होनेपर भी निःशंक रहता है। अपनी प्रदान महर्षि अन्य नायिकाओं से तिरस्कृत होने पर भी लज्जित नहीं होता। स्पष्टता और दोषों के प्रकट होनेपर भी झूठ बोल देता है वह धृष्ट नायक है।

4) **षठ नायक :** प्रथम प्रेयसी से छिपाकर अन्य प्रेयसी से प्रेम करनेवाला संलज्ज नायक शठ कहता है। एक नायिका से प्रेम करे किंतु बाहर दोनों नायिकाओं के प्रति और छिपे रूप से दूसरी नायिका का अप्रिय करें। वह शठ नायक कहलाता है।

अन्य पात्र : नायक की सहायता करनेवाले तथा प्रासंगिक कथा के प्रमुख पात्र को पीठमर्द कहते हैं। नायक का विरोध करनेवला " प्रतिनायक " कहलाता है।

प्रतिनायक : प्रतिनायक नायक का प्रतिद्वंदी होता है। वह धीरोध्दत होते हुए भी छली, लोभी पापाचारी होता है। वह आमतौरपर नायक के द्वारा पराजित होता दिखाया जाता है जैसे रावण या दुर्योधन।

नायक के सहायक पात्र : नायक के सहायक पुरूष पात्र भी होते है। जैसे पीठमर्द, विदूषक, वीट।

पठिमर्द : नायक की सहायता करनेवाले तथा प्रांसगिक कथा के प्रमुख पात्र को "पठिमर्द" कहते है। यह नायक की अपेक्षा अधिक देय गुणवाला होता है और सदैव इसकी सहायता में तत्पर होता है।

विदूषक : संस्कृत नाटकों में एक विशेष पात्र हास्य रस की सृष्टि के लिए रखा जाता था जिसे "विदूषक" कहा जाता है। वह प्राय: ब्राम्हण ही होता है। वह अपनी वेशभूषा, बोलचाल और व्यवहार से नायक का मनोविनोद करता है। अवसर पडने पर उसे परामर्श भी देता है। वह किसी विशिष्ट कला का विशेषत्व होता है उस कला से नायक का मनोरंजन करता है।

वीट : नायक को गीदादि विधाओं से प्रसन्न करनेवाला बिट कहा जाता है। विदूषक के समकक्ष यह पात्र होता है। अपनी कला की सहायता से नायक का दिल बहलाता है।

नायिका – परिकल्पना

भारती आचार्यों के अनुसार नायक की पत्नी अथवा प्रिया नायिका कहलाती है। गुणों में वह नायक तुल्य होनी चाहिए। किन्तु यह आवश्यक नहीं समझा जाता कि नायिक नायक की पत्नी या प्रिया हो। नायक के अनुसार वह भी त्यागी, कुलीन, कृतीविनीत, कृपवान, कार्यकुशल, अनुसक्ततेजस्वी, विदग्धागदि गुणों से विभुषित होती है।

नायिका – भेद के आधार :

भारतीय आचार्यों ने नायकों के भाँति नायिकाकों भी विभिन्न कोटियाँ निर्धारित की हैं। उनके लिये विविध आधार भूमियों का अवलंबन किया हैं। नारी की सामाजिक प्रतिष्ठा, आचरण की पवित्रता अथवा अपवित्रता, कामदशा, आयु की विशेषता, आंतरिक प्रवृत्ति, अंगरचना आदि आधार – भूमियाँ नायिका भेद में अर्न्तभावित है। डॉ. सुरेंद्रनाथ दीक्षित ने भरत की नाट्यकला का विवेचन करते हुये उनके द्वारा गृहित नायिका भेद के आधार निम्नलिखित हैं।[26]

(1) प्रकृति भेद – उत्तमा, मध्यमा, अधमा(3)

(2) आचारण की शुध्दता – अशुध्दता – बाहया, आभ्यान्तरा, बाहयभ्यन्तरा (तीन)

(3)

(4)

(5)

(3) सामाजिक प्रतिष्ठा – दिव्या, नृपपत्नी, कुल स्त्री–(गणिका) (चार)

(4) कामदशा – वासकसज्जा आदि (आठ)

(5) शील – धीरा, ललिता, उदात्ता, निभृता (चार)

(6) अंगरचना और अन्तःप्रवृत्ति – दिव्यसत्त्वा, मनुष्य सत्त्वा आदि (बाईस)

नायिका भेद –

(क) उपर्युक्त आधारभुमियों को न्यूनाधिक रूप में परवर्ती आचार्योंद्वारा भी ग्रहण किया है। यद्यपि भरत और परवर्ती आचार्यों में दृष्टि भेद स्पष्ट हैं। भरत ने नाट्य को प्रश्रय दिया और अन्य आचार्यों ने रस को। भरत की चार प्रकार की नायिकायाँ दिव्या, नृपपत्नी, कुलस्त्री और गणिका का रामचंद्र गुणचंद्र ने संज्ञा परिवर्तन करके इसप्रकार वर्गीकरण किया है।[27]

(1) कुलजा – (भरत की कुल स्त्री के समान) कुलजा नायिका ब्राम्हण या वणिक कुलोत्पन्न होती है। इसका चरित्र उदात्त नायिका के रूप में होना चाहिए। वणिक या ब्राम्हण वेश का नायक शान्तचरित्र का होता है। नायिका उदात्तचरित्रा है।

(2) दिव्या तथा (3) क्षत्रिया – (भरत की नृपपत्नी के समान) इनको धीरा, उदात्ता तथा ललिता – तीनों कोटियों में रखने की स्वीकृति नाट्य दर्पणकार ने दी है।

(3) पण्यकामिनी – (भरत की गणिका के समान) इसको "ललित्तोदात्ता" नायिका के रूप में चित्रित करना चाहिए।

नायक की पत्नी या प्रेयसी होने के कारण इसके 1) स्वकीया 2) परकीया 3) सामान्या या साधारणी स्त्री।

(ख) स्वकीया – यह नायिका शीलवती एवं सरलता से युक्त होती है। स्वकीया नायिका के संबंध में धनंजय का कथन है कि वह "शीलार्जवादि" से युक्त होती है। इसप्रकार धनंजय के अनुसार स्वकीया नायिका के लक्षण में यह निर्धारित हुआ कि वह उत्तम चरित्रवली, पतिव्रता महान अन्तकरणवाली लज्जायुक्त एवं पति के प्रति अपने व्यवहार में कुशल होती है। स्वकीया नायिका तीन प्रकार की हो सकती है।[29]

1) मुग्धा 2) मध्या तथा 3) प्रगल्भा।

(1) मुग्धा नायिका : वह (अवस्था) में मुग्धा जिस प्रकार नीवना होती है। इसी प्रकार रती के सम्बन्ध में उसका ज्ञान भी सीमित होता है। इसप्रकार वह अवस्था एवं कामकला के सम्बन्धी ज्ञान में नवीना होती है। रतीक्रिडा से दूर भागनेवाली होती है। यदा कदा नायक के कुपित होनेपर भी उसका स्वभाव यथावत

कोमल बना रहता है। यदि वह क्रोधित भी होती है लेकिन उसका क्रोध मिणस के लिए ही होता है। मुग्धा नायिका के चार प्रकार हैं – [30]

(1) वयोवृध्दा – (वयसाधि की अवस्थाकाली)

(2) कामुग्धा – (कामभाव से अनायित अथवा भोलि)

(3) रतिकामा – (रति एवं संभोग से डरनेवाली)

(4) मृदुकोपना – (क्रोधित नहीं होनेवाली या होनेपर तुरन्त मान जानेवाली)

(2) मध्यानायिका – स्वकीया नायिका के तीन भेदों में दूसरा है – मध्या। चढती जवानी की सब कामनाओं से भरी हुई और मुर्च्छा की अवस्था रति में समर्थ रहनेवाली नायिका को मध्या कहते है।[31] इसके भी तीन भेद है।

(1) यौवनावती (2) कामवती तथा (3) मोहान्त सुरत क्षमा

उपर्युक्त भेदो के अतिरिक्त मध्या नायिका की अन्य तीन कोटियाँ भी होती है जिनका निर्धारण नायक के साथ होनेवाले उनके व्यवहार से होता है। ये है –

(1) धीरा – नायके किसी अपराध या अन्य नायिका से प्रेम करनेपर ताने मारनेवाली।

(2) अधीरा – सदन के साथ कटु वचन भी बोलनेवाली।

(3) धीराधीरा – रोने के साथ ताना मारनेवाली।

(3) प्रगल्भा नायिका – स्वकीया नायिका का तीसरा भेद – प्रगल्भा है। प्रगल्भा उसे इसलिए कहा गया है कि वह बड़ी ढ़ीठ वाचाल एवं लज्जा हीन होती है। रति अथवा प्रिय समागम के लिए वह इतनी आतुर होती है कि तुरन्त वाह आत्मसमर्पण कर देती है। और ऐसी चेष्टा करती है कि मानों प्रिय के अंगोमें ही प्रवीष्ट हो जाएगी। अर्थात प्रिय के अंगों से अपने अंग प्रत्यंग को एकीकृत कर देना चाहती है।[32]

प्रगल्भा के तीन भेद होते है। (1) यौवन्नान्धा अर्थात गाढयौवना (2) स्मरोन्मता तथा (3) रति प्रगल्भा।

मध्या के समान नायक पर कुपित होने की अवस्था के कारण प्रगल्भा के तीन भेद और हो जाते है।

धीरा – यह अपने क्रोध को दो प्रकार से प्रकट करती है। या तो वह नायक के प्रति अतिशय आदर प्रकट करके उसे लज्जित करने का प्रयास करती है। या संभोग में नायक के साथ न देकर उदासीनता प्रकट करती है।

अधीरा –कृतापराध नायक को द्वन्द गुस्से की तैश में आकर फटकारती है। या प्रताहीत करती है।
धीराधीरा – सबक्रोक्ति ताने मारती है।

प्रगल्भा को हो प्रौढा" कहते है। वह रूपगर्विता होती है। जैसे ही उसके नाम से ही प्रकट होता है। उसे अपने रूपसौंदर्य पर बडा गर्व एवं नाझ होता है। और उसी के बल पर वह अपने शौहर को कठपुतलि बनाके अपनी ऊँगलियों पर मनमानी नचाती है। प्रणय कोप करके मनोनुकुल उससे आचरण कराती रहती है।

(ख) परकीया – परकीया अन्य स्त्री होती है जो किसी अन्य नायक की विविहिता पत्नी होती है। परकीया कहलाती है। गुप्त रूप से परपुरूष से सम्बन्ध स्थापित करनेवाली स्त्री परकीया नायिका कहलाती है। परकीया नायिका के दो भेद माने जाते है। कन्या और विवाहिता। कन्या को अनुढा और विवाहिता को ऊढा कहते है।[33]

(1) कन्या और (2) विवाहिता।

प्रथम कोटि की नायिका लज्जाशीला एवं कुँआरी होती है। दूसरी कोटिवाली नायिका चरित्रहिन होती है। कुलटा होती है। अपनी कामवासना से उद्दिप्त होकर पर पुरूष से अभिसार करती है। परकीया नायिका में जो साहस धैर्य एवं अनुराग की तीव्रता तथा कपटों को सहन करने की क्षमता दृष्टिगोचर होती है। परकीया समय आनेपर अपने प्रियतम के लिये त्याग एवं बलिदान करने से भी नहीं हिचकिचाती। उसे पग पग पर समाज के व्यंग बाणों का शिकार होना पडता है। मौत के साये में हमेशा जिन्दादिल बनकर जिन्दगी गुजारती है। उसके दिल में अपने प्रेमी के लिये मरमिटने की लालसा हमेशा पनपती रहती है। वह दुनिया की दुनियादारी की परवाह नहीं करती। बंगाल के जाने माने उपन्यासकार स्वर्गीय शरदचंद्र चट्टोपाध्याय के "चरित्रहिन" की नायिका किरणमयी परकीया ही तो है वह उपेन्द्र को पाने के लिये क्या नहीं करती। इसतरह परकीया जब तक अपने जिस्म में आखरी साँस बाकी है तब तक अपने प्यार को निभाती रहती है।

(ग) सामान्या (गणिका)

साधारणी एक ऐसी सामान्य तरूणी होती है। जो सब के लिये सर्वथा सहज सुलभ होती है। वह रूख से कठोर एवं व्यवहार में कड़ी होती है। कला, प्रगल्भता और धुर्तता से मुक्त साधारण स्त्री को सामान्या या गणिका कहते है। वह कुलशील रहित और निष्ठावान होती है। वह न तो दृष्ट से नफरत एवं घृणा करती है और न गुणवान से प्रेम करती है। सिर्फ चन्द पैसों के लिये वह अपनी इज्जत का सौदा

करती है । इन गणिकाओंमें भी नवाचित कदाचित एक ऐसी नारी मिल जाती है जो मात्र एक प्रेमी के प्रति पूर्ण समर्पित होती है । और अपने ईश्क से उसे रंजित करती है जैस कालिदास उर्वशी, शुद्रक की वसंत सेना तथा शरश्चंद्र की राजलक्ष्मी ।

(घ) नायिका का वर्गीकरण उनकी प्रणयगत स्थिति अथवा अवस्था के अनुसार किया जाता है । इस वर्ग की प्रत्येक नायिका अपने प्रणय जीवन में विभिन्न अवस्था में अवस्थित हो सकती है । ऐसी स्थितीयाँ आठ मानी गयी हैं । (1) स्वाधीनभर्तृका – इस प्रकार की नायिका का पति उसके अधीन समिप एवं सदा उससे खुष रहता है । उसकी वजहसे उसका दांपत्ति जीवन अत्यंत सुखमय शांतीपूर्ण एवं प्रसन्न रहता है (2) वासक सज्जा – इस वर्ग की नारियाँ अपने प्रियतम से मिलने के लिए श्रृंगार सज्जा में व्यस्त रहती है । जिस दीन उसका प्रेमी से समागम निश्चित है वह अपने को नानाविध अंगरागादि से प्रसाधित सुवासित करके सुन्दरतम बनाते होती है । संगम स्थल को भी सुगंधो और प्रसाधनों से ऋध्द किये रहती है। नायकसे यकिनन समागम निश्चित है इसलिए नायिका बेहद खुष होती है।

(3) विहोत्कांठिता – इस वर्ग की नारी प्रितम की विरह में शमा बनके जलती है । प्रितम ने जो उससे आने का वादा किया थं लेकिन वह नही आ पाता प्रियतम के न आने पर वह बेताब होती है । बेसबरी से प्रियतम का इंतजार करती है ।

(4) खण्डिता – प्रियतम के अन्य नायिका के साथ सहवास के कारण खिन मना नायिका खण्डिता कहलाती है खण्डिता वह स्त्री है जिसके प्रिय के व्यवहार एवं आचरण से उसका विश्वास खण्डित हो गया हो उसका दिल चकनाचुर हो जाता है वह निराश एवं खिन्न होती है ।

(5) कलहान्तरिता – जो नायिका अपने क्रोध के वशीभूत होकर अपराधी नायक तिरस्कृत करें और अनन्तर पश्चाताप करनी पडे वह नायिका कलहान्तरिता है ।

(6) विप्रलब्धा – पूर्व निर्धारित समय एवं स्थल पर नायक के न आने से नायिक अपने आपको अपमानित एवं ठगा समझती है। वह विप्रलब्धा कहलाती है ।

(7) प्रोषित – भर्तृका – जिस नायिका का पती किसी कार्यवश परदेश जा गया हो उसे प्रोषित – भर्तृता कहते हैं ।

(8) अभिसारिका – कामातिरेक के कारण नायक को अपने पास बुलाने वाली अथवा स्वयं नायक के पास जानेवाली अभिसारिका कहलाती है । स्वयं नायक के पास जाने वाली अभिसारिका के दो भेद होते हैं ।

जोस्नी और कामसी । जोस्नी चाँदनी रात में सफेद लिबास पहनकर नायक के पास जाती है । और कामसी अंधेरी काली रात में काला लिबास पहनकर अपने प्रियतम के पास जाती है । क्योंकि कलई न खुल जाय सभी अभिसारिकाए पायल एवं चुडीयोंको वरजनीय मानती है अपने जीगरी सहेली से अनुगमित होती है

स्वाधीन भर्तृका और वासकसज्जा हमेशा खुश रहती है । श्रृंगारीक क्रिडा निमग्न रहती है । शेष नायिका चिन्ता, निःश्वास, श्वेद, आसुँ, ग्लानी, आभूषणाभाव आदि से युक्त होती हैं । अभिसारिका को छोड कर शेष पर ही घटित होती है । अभिसारिका में इतनी चपलता और जिन्दादीली होती है इसलिए वह निहाल होती है ।

(ड़) नारी की वैयक्तिक भिन्नता उसकी अंग रचना और मन शौष्ठव से भी निर्धारीत की जा सकती हैं। नारी – प्रकृति नितान्त स्वतंत्र नहीं है। उसपर विराट प्रकृति के अन्य प्राणियों के रूप – रंग, स्वभाव आदि का भी प्रभाव पडता है और उसके प्रभाव – योग से नारीको पूर्णता प्राप्त होती है इसलिए मृगी सी सुकुमार, और चंचल बडी आँखोंवाली होती है । कोई गाय की तरह पवित्रता एवं सत्यता की धारा में धुली हूई आदि। इस वर्ग की नारियाँ तीन प्रकार की होती है । नाटयाचार्य भरत मूनीने इस बारेंमें विस्तार से विवेचन किया है ।[35]

(1) उत्तमा – प्रिय के समक्ष अप्रिय प्रसंग होने पर भी अप्रिय वचन नहीं बोलती। बहोत देर तक रोष युक्त नहीं रहती । शील, शोभा और कुल की उच्चता के कारण पुरूषोंकी कामना का लक्ष होती हैं। कलाकुशल, कामतंत्र में निश्णात, दर्यादील, रूपवती ईर्शारहित, बातचीत करने वाली, कार्यकालकी विशेषज्ञ वह परम रमणीय नारी होती है ।

(2) मध्यमा – पुरूषोंकी अभिलषित तथा उनकी कामना करने वाली कामोपचार में कुशल, प्रतिपक्षियों से ईर्शा करनेवाली क्षीण क्रोधवाली अभिमानीनी लेकिन पलभरमें खुश होने वाली वह मध्यक श्रेणी की नारी होती है।

(3) अधमा – बिना अवसर के क्रोध करनेवाली, दुष्टशीला, अतिमानीनी, चंचल, कठोर और देर तक

क्रोध करनेवाली मध्यम श्रेणी की नारी होती हैं । नायिका भेद को निम्नलिखित तालिका के व्दारा दर्शाया जा सकता है।

नायिका – भेद

नायिका

स्वकीया — परकिया — सामान्य (गणिका)

मुग्धा — मध्या — प्रगल्भा — मुग्धा — मध्या — प्रगल्भा

धीरा — अधीरा — धीरा-धीरा — धीरा — अधीरा — धीरा-धीरा

धीरा — अधीरा — धीरा-धीरा — धीरा — अधीरा — धीरा-धीरा

ज्येष्ठा — कनिष्ठा — ज्येष्ठा — कनिष्ठा

(4) प्रतिनायिका – बहुपत्निवान नायक के मामले में उसका पूर्ण प्रणय निश्चितत: आस्तित्ववान रहत हैं। ऐसी दशा मे नायिका के साथ प्रेमी की पहली पत्नी या प्रेमिका हो सकती है। ऐसे प्रथम पत्नियाँ या प्रेमिकाएँ प्राय: पश्चादवर्ती प्रेम के प्रति ईर्ष्यालू होती हैं । वे जादा तर मध्या या प्रगल्भा होती है । और खण्डिता, विप्रलब्धा या कलहान्तरिता के रूपमें उपस्थित होती है। आम तौर पर वे नायक के प्रति कठोर होती है । और प्रणय के प्रेम – व्यापार पर चौकसी रखती है । जिससे वस्तुत: नाटकीय कार्य में थोडे समय के लिए गतिशीलता जा जाती है । उनका यह रूप प्रतिनायिका का विश्लेषण प्रदान करता है प्रसादजी के "स्कन्धगुप्त" की विजयाप्रतिनायिका का उत्तम निर्देशन है।

(5) सहनायिका – यह दो प्रकार की होती है । (1) वह जो नायिका के प्रणय व्यापार में सहायिका होती है। नायिका को प्रणय की उदभूति से लेकर परिणती तक वह सफल सहाय्य प्रदान करती है। उदा: अभिज्ञान शाकुंतल की प्रियवन्दा दूसरी कोटी की सह नायिका एक उपकथानक का नेतृत्व करती है। नायिकाके समान गुणशील – युक्त होती है। उदा: "चन्दगुप्त की अल्का"।

(6) दूती – नायिका की प्रणयावस्था, कामसक्त भावना आदि को ध्यानमे रखकर कुछ नारियाँ नायिका की सहाय्यता करनेवाली होती हैं। उसे दूती कहा जाता है। दूती की तीन श्रेणीयाँ मानी गयी है। (1) निसृष्टार्था – निसृष्टार्था नायक नायिका की भावनाओंको समझने तथा अवसरानुकुल स्वयं उनको उपयुक्त उत्तर देने में सक्षम होती है । यह दूती अपने काम को बडे कायदे और खुबसुरती से अंजाम देने में समर्थ होती है।

(2) मितार्था – यह मितभाषिणी होती है। नाजुक मामलों को ठीक मोड पर लाने के लिए वह बडी उपादेय होती है।

(3) संदेशवाहिका – इतका काम केवल होता है संदेश ले जाना और संदेश ले आना इसलिए उन्हें संदेश वाहिका कहलाता है ।

(ख) पाश्चात्य विचारधारा

नायक – भारतीय आचार्योंकी भाँती पश्चिमी आचार्यों ने भी नाटक के पात्र और चरित्र सृष्टी पर गंभीरता से विचार किया है। जिस प्रकार भारतीय विचार धाराके अनुसार "पात्र" और "चरित्र" शब्द एक विशिष्ठ अर्थ रखते है । उसी प्रकार पश्चिमी विचार धारामें नाटकीय पात्रोंके अर्थ में ग्रीक और लैटीन भाषाओंमें परसोने शब्द का प्रयोग किया गया है ।[36] अरस्तुने अपनी काव्य शास्त्र में नायक के बारेंमें निम्नलिखित छे बातोंकी चर्चा की है । (1) चरित्रको भर्द होना जरूरी है।

(2) चरित्र में औचितता हो अर्थात पुरूष में एक विशेष प्रकार का शौर्य होता है पर नारी में शौर्य का चातुर्याका समावेश अनुचीत होगा।

(3) चरित्र मानव जीवन के अनुकूल होने की जरूरती है ।

(4) चरित्र में एकरूपता होनी चाहिए।

(5) चरित्र निरूपन में कवी को सदैव अवश्यंभावी या संभाव्य को लक्ष बनना चाहिये।

(6) त्रासदी में ऐसे व्यक्तियोंकी अनुकृती रहती है जो सामान्य स्तरसे उंच्चे होते हैं। इस संदर्भ में उन्होंने चित्रकारों का आदर्श सामने रख्खा हैं संक्षिप्त में अरस्तु के अनुसार चरित्र चित्रणके लिए नाटककार को छे बातों की ओर ध्यान देने की जरूरत है ।

(क) भद्रता (ख) औचित्य (ग) जीवनानुकुलता (घ) एकरूपता (च) संभाव्यता (छ) श्रेष्ठ चित्रकारोंका आदर्श।

अरस्तुने त्रासदी के नायक के गुणों पर भी प्रकाश डाला है। कुछ बाते दृष्ठव्य है। त्रासदी का नायक खल पात्र नहीं होना चाहिए । वह सर्वथं निर्दोष नितांत सज्जन भी नही होना चाहिए । इन दो बातों के अतिरिक्त त्रासदी का नायक सहज मानव भावनाओंसे युक्त होना चाहिए अर्था उसके साथ प्रेक्षक का तादात्म्य हो। नायक और प्रेक्षक दोनों में मानव स्वभाव का साम्य होना चाहिए । वह अत्यंत वैभवशाली यशस्वी और कुलीन पुरूष हो।

खलनायक – मनुष्य गुणावगुणोंका समुच्चय है उसमें कुछ सदगुण होते और कुछ दुर्गुण भी होते है। कभी कभी वे अपने अवगुणों के व्दारा दुष्ट बन जाता है। और ये दुष्टता उसके क्रियाकलापों व्दारा इतनी बढ जाती है कि उसकी वजह से उसमें एक प्रकार की भव्यता भी आ जाती है । इस प्रकार की भव्यता को "भीषण सुन्दरता " भी कहाँ गया है। जर्मन दार्शनिक थ्योरी ऑफ फाईन आर्ट ग्रंथ में लिखा है । "निकृष्टता जितने ऊंचे स्तर की होगी "ऐस्थेटिक" निर्गय में वह परावर्तीत होकर उतनी ही महनीय हो जायेगी।[37]

विश्वविख्यात नाटककार (त्रासदीकार) ने खलनायक की अदभूत सृष्टी अपने नाटकों में की है । रिचर्ड तृतीय तथा माईक बेथ जानते बुझते हुअे उन कार्यमें अपने को नियोजित करते है जिन्हें वो स्वयं "खलत्वपूर्ण" मानते समझते है। इसप्रकार अपनी खलता की स्पष्ट प्रतिची एवं अनुभुती है।[38] ऐसी व्यक्ति वास्तव में जन मानस आकरान्त अपसामान्य ( ) पुरूष होते है। जिने कुशल लेखक विलेन (हीरो)के रूपको कुशलता से अंकीत कर सकता है ।

नायिका – पाश्चात्य नाटयालोचनमें "त्रासदी" के साथही साथ "कामदी" पर भी विचार किया गया है। जहा त्रासदी में पुरूष पात्रोंकोभी सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है । वहाँ कामदी में स्त्री पात्रोंको भी पुरूष पात्रों के साथ महत्त्व पूर्ण माना गया है । कामदी के चरित्र अथवा पुरूष और नारी समाजसे ग्रहण किये जाते है । कहने का तात्पर्य यह है कि कामदी के पात्रोंमें काल्पनीकता वाचवियता के स्थान पर यथार्त वादीता होती है। त्रासदी के पात्रों के क्रियाकलापोंमें जो असाधारणता होती है वह कामदी के पात्रोंमें नहीं। "कामदी में वस्तुकी अपेक्षा चरित्र को अधिक महत्त्व दिया जाता है। इसमें पात्र न तो अतिमानवीय होते हैं और न ही अमानवीय ही बस वे सामान्य मानव होते है। वे एकान्त जीवीत न होकर समाजकी ईकाई रूपमें प्रस्तुत किय जाते हैं।[39]

कामदीके नायिकाओंके बारेमें डॉ.रामशंकर त्रिपाठी का कहना है कि "कामदी में प्रभाव की पारदर्शकता के कारण स्त्री का मोहक, चपल, प्रेमल रूप वर्णीय होता है इसलिए ——— प्रतीच्य कामदी की नायिका प्राच्य नायिका – भेद के अंतर्गत रूपायित की जा सकती है अर्थात भारतीय नायिका के रूप, गुण, अलंकार आदिका दर्शन पाश्चात्य कामद नायिकाओं में किया जा सकता है"।[40]

पात्रों के वर्गीकरण के आधार : आधुनिक दृष्टि

डॉ. सुरेन्द्रनाथ दीप्ति ने भरत की नाट्यकला का विवेचन करते हुए नायिका भेद के आधारों को उल्लेखित किया है जिसका उल्लेख इससे पहले किया गया है। डॉ. रामेश्वरलाल खण्डेलवाल ने भी पात्रों के वर्गीकरण के बारे में काफी विवेचन किया है और प्रत्येक पात्रों का आधार भी निश्चीत किया है।[41] यथा –

पात्रों के वर्ग	उनके आधार
1. स्त्री व पुरूष	1. प्राकृतिक रचना
2. यथार्थवादी व आदर्शवादी	2. जगत व जीवन को देखने की मूल दृष्टि
3. उच्चवर्गीय व निम्नवर्गीय	3. समाज–व्यवस्था व आर्थिक दृष्टि
4. नागरिक व आदिवासी ग्रामीण	4. समूह जीवन व शासन व्यवस्था
5. व्यक्तिवादी व सामाजिक	5. अहंवृत्ति का न्यूनाधिक्य
6. बौद्धिक व भावुक – कल्पनाशील	6. अन्तःकरण की मूलवृत्ति
7. ऋतुगामी व कुचकी या सज्जन व दुष्ट	7. जीवन–व्यवहार
8. गृही व विरक्त – संन्यासी	8. आश्रम व्यवस्था
9. भारतीय व विदेशी	9. संस्कृति
10. विद्रोही व नियतिवादी	10. सृष्टि विधान की स्वीकृति, अस्वीकृति
11. बाल, युवा, प्रौढ व वृद्ध जर्जर	11. कार्य–क्षमता शारीरिक बल
12. पौराणिक, ऐतिहासिक व आधुनिक वर्तमान	12. काल
13. पहाडी, मैदानी, समुद्र तटवासी	13. जलवायु व भूगोल
14. शोषक व शोषित या सेव्य व सेवक	14. अधिकार वृत्ति या शासन वृत्ति
15. ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि	15. वर्ण व्यवस्था
16. असाधारण शक्ति, सिद्धि आदि	16. अति प्राकृतिक, अशरीरी या मायावी वृत्ति के पात्र

पात्रों का वर्गीकरण :

यद्यपि प्राचीन भारतीय एवं पाश्चात्य आचार्यों ने नायक और नायिका के भेदोंपर पर्याप्त प्रकाश डालकर एक प्रकार से पात्रों के प्रकारपर प्रकाश डाला है। जिसकी वजह से पात्रों की विविधता स्पष्ट होती है और आधुनिक साहित्य में भी प्रकारान्तर से पात्रों के भेद दृष्टिगोचर होते हैं।

आधुनिक विचारकों ने भी साहित्य में चित्रित पात्रों के प्रकारों पर प्रकाश डाला है। साहित्यिक विधाओं में नाटक सब से प्राचीन विधा है। नाटक को पांचवा वेद कहा गया है। नाटक परम्परा के अंतर्गत पात्रों को तीन प्रमुख श्रेणियों में विभाजीत किया गया है – 1) दैवी 2) दानीव 3) मानवी। [42]

आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी ने मानव के स्वभाव के आधारपर पात्रों का विभाजन इस प्रकार किया है। यथा –

1) आदर्श स्वभावतोल पात्र।

2) जात्गित स्वभाववाले पात्र।

3) व्यक्तिगत स्वभाववाले पात्र।

4) सामान्य स्वभाववाले पात्र।[43]

डॉ. रामेश्वर खण्डेलवाल ने अपने डी.लिट के शोध-प्रबंध में " जयशंकर प्रसाद : वस्तु और कला " में प्रसाद के पात्रों का वर्गीकरण किया है। [44] जो इस प्रकार है –

डॉ. विमला शर्मा ने व्यावसायिकता के धरातल पर चित्रित नारी के विविध रूप वर्गीकृत किये हैं।[45]

क) मजदूरेन

ख) खेतिहर महिलाएँ

ग) शिक्षिका

घ) डॉक्टर, नर्स

च) क्लर्क

छ) प्रशासनिक पद पर कार्यरत महिलाएँ ज) अन्य : चोर, डाकू, स्मगलर, भिखारिनी, मॉडल

आधुनिक हिंदी नाटकों में नारी-पात्र :

सृष्टि के विकास में सचेतन प्राणियों में मुख्यतया दो वर्ग दिखायी पड़ते हैं। नर और मादा। मानव जाँति में भी मुख्य दो वर्ग परिलक्षित होते हैं पुरूष और स्त्री। ये भेद निश्चित रूप से प्राणी के

संरचना के परिचायक हैं और इसलिए स्वाभाविक है। नारी और पुरूष का परस्पर अन्योन्य सम्बन्ध अनिवार्य ही है। वास्तव में स्त्री नारी के बिना पुरूष और पुरूष के बिना नारी का जीवन अधूरा है। प्राचीन काल से भारतीय मनीषियों ने नारी की महिमा गायी है। और आज नारी स्वयं अपने पैरों खड़ी हुयी है। और शिक्षित होकर अपने जीवन का यथोचित विकास कर रही है।

नाटक मानव समाज का चित्र है। जीवन में स्त्री और पुरूष का जीतना महत्त्व है उतना ही नाटक में नायक और नायिका के रूप में हैं। वास्तविक जीवन में जो स्त्री के विभिन्न रूप दिखाई देते हैं जैसे माता, पत्नी, प्रेयसी, पुत्री, बहन, सखी, दासी वैसे ही नाटक में स्त्रियों के विभिन्न रूप है। मानव जीवन के उत्थान में नारियाँ हमेशा प्रयत्नशील रही है। नारी के बिना जीवन की अनुकृति अधूरी है। इसकी वजह से नाटक में स्त्री पात्रों की उपयोगिता स्वयं सिद्ध हुई है। प्राचीन काव्यकारों ने नाटक में नारी के महत्त्व को ध्यान में रखते हुए पात्रों का निर्माण किया है। समाज में स्त्रियों ने पुरूषों के बहुत ही महान उद्देश्यों को पूर्ण करने में अपरिमित सहयोग दिया है। नाटक में स्त्री पात्र की अनिवार्यता है। इस बारे में डॉ. श्रीमती मुकुलरानी सिंह का मत है, " नारी पात्र के बिना अभिनय कला में एकांगिता आ जायेगी और स्वाभाविकता का अभाव हो जायेगा। जिस उद्देश्य की पूर्ति के लिए नाटककार नाटक की रचना करता है उसमें स्त्री पात्र की अनिवार्यता है। यदि नाटक में स्त्री पात्र का कोई भी स्थान न हो तो नाटक के अभिनय में, भाव में और उद्देश्य की पूर्ति में सफलता नहीं प्राप्त होगी। [46] नाट्यसाहित्य में नारी पात्र की योजना का विशिष्ठ एवं अक्षुण्ण महत्त्व हैं। जीवन-अभिनय को रंगमंच पर सजीवता के साथ उतार कर रस ग्रहण कराना यह दृश्यकाव्य का मकसद है।

आधुनिक हिन्दी नाटक साहित्य में नारी पात्र को परिलक्षित कर के नारी की अनेक नाटककारों ने नारी के विभिन्न रूपों को रूपायित किया है।

नाटकों के क्षेत्र में प्रसादजी का आगमन होने से उसमें चार चाँद लग गये। प्रसाद के नाटकों में आजातशत्रु, कुलस्वामिनी, चंद्रगुप्त, स्कंदगुप्त, राज्यश्री इ. नारी विषयक विविध बिंदुप्रायर विचार हुआ। " अजातशत्रु " में गौतम की शिष्या मल्लिका नाटक की नायिका है। मागधी को हम तीन रूपों में देखते हैं 1) महारानी 2) वेश्या 3) नर्तकी आम्रपाली के रूप में। छलना स्कंदगुप्त की विजया और अनंतमयी की तरह छलनामयी नारी पात्र है। " चंद्रगुप्त " इस नाटक में तीन नारियाँ कल्याणी, मालविका और कार्नेलिया चंद्रगुप्त को दिलोजान से चाहती है। कुलस्वामिनी एवं अनंतदेवी दोनों बदनसीब है क्योंकि दोनों नपुंसक पत्नियाँ हैं कुलस्वामिनी आदर्श नारी है। वह आदर्श के रास्तेपर चलती है वह संयमशील है इसलिए पाठकों

की सहानुभूति पाती है। अनंतदेवी मानो औरत के रूप में पिशाचिनी है। वासना में पगी छलनामयी नारी है। राज्यश्री " प्रभाकर वर्धन की पुत्री और हर्षवर्धन की बहन एवं बौद्ध धर्म की प्रचारिका है। " " एक चूँट " में नारी के उच्छृंखल रूप और मर्यादित प्रेम की समस्या पर विचार किया गया है। प्रसादजी ने नारी समस्या पर बड़ी कुशलता से विचार करके उन्होंने नारी की आजादी का स्वर बुलन्द किया है।

उदयशंकर भट्ट जी ने " कमला " नाटक में अनमेल विवाह का दुष्परिणाम भोगनेवाली नारी का अंकन किया है। पं. लक्ष्मीनारायण मिश्र जी ने समस्या प्रधान नाटक अधिक लिखे हैं जिनमें नारी के विविध रूपों का अंकन हुआ है। " संन्यासी " में मालती और किरणमयी यौन समस्या में उलझी है। " राक्षस का मन्दिर " में वेश्या असगरी बड़े अफसोस की बात है कि वह पिता की रखैल बनती है। वेश्यावृत्ति की विवश हो जाती है। " मुक्ति का रहस्य " इस नाटक की नायिका आशादेवी अपने पावनप्रेमी उमाशंकर का त्याग करके इज्जत लूटनेवाले बेहशी डॉक्टर को अपना पति मानती है। " सिन्दूर की होली " की नायिका अंत तक अपने बेवापन का समर्थन करती है। मिश्रजी ने नारी चित्रण में नारी की सामाजिक चेतना एवं मनोविज्ञान दोनों को एकसाथ अनोखी अदा से पेश की है।

हरिकृष्ण प्रेमी के कई नाटकों में नारी के विविध रूप मिलते हैं। " छाया " में लाहौर के कामुक जीवनपर नसीम का चरित्र टीका करता है। " ममता " में गरीब प्रेमिका बड़े दिलवाली है। वह अपनी स्वेच्छा से अमीर दिलबर का विवाह इक अमीर लड़की से करा देती है वह लागमयी नारी बालिका वधू बेवा बनकर उसपर क्या गुजरती है इसका जिन्दा सबूद " उद्धार " यह नाटक है। " रक्षाबंधन " में जाँति पाँति की दिवार को तोड़कर हिन्दू बहन द्वारा मुस्लिम भाई के हृदय में पवित्र प्रेम सृजन की यह अनोखी कहानी है।

उपेन्द्रनाथ अटक जी इस पीढ़ी के सशक्त नाटककार माने जाते हैं। उन्होंने नारी की शिक्षा और विवाह सम्बन्धी समस्याओं को लेकर नाट्य रचना की। " लक्ष्मी का स्वागत " में हक बदनसीब बहू की नगण्य स्थिति पर करूणा व्यक्त की है। जो मर जाने पर उसके सांस ससूरजी द्वारा नये रूप में लक्ष्मी का स्वागत धन के मोह में किया जाता है। " सूखी डाली " की बेला जो नवागत है। आँखों में सुनहरे संसार के सपने लेकर नयी उमंग से ससुराल आती है लेकिन परिवार उसकी उपेक्षा करता है। तथा पारिवारिक विघटन को इसमें दर्शाया गया है। " स्वर्ग की झलक " आधुनिका नारी पर कमर कस के व्यंग्य कसा है। जिसे अपने बिमार बेटे से भी नृत्य प्राण से प्यारा है। " उड़ान " में नारी मुक्ति का स्वर उजागर हुआ है। " कैद " में नारी का अंतर्मन चित्रित हुआ है। प्रिय के अभाव में धनऐश्वर्य, समाज, नौकरी उसकी नजर में कुछ भी नहीं है। " अंजो दीदी " घर की स्वामिनी है जो परिवार के सब लोगों को कठपुतली मानकर उनको

अगुँलियों पर मनमानी नचाना चाहती है।

सेठ गोविन्ददास जी ने " दलित कसूम " में बालविधवा का लक्षण चित्र पेश किया है। " पतित सुमन " में वेश्या को प्रस्तुत किया है। दुख को नया सुख किस में भी उन्होंने विलासिता के परिप्रेक्ष्य में नारी जीवन की समस्या को चित्रित किया है। " सुहाग बिंदी " में नारी के दिल की कसौटी तथा उसका आन्तभाव दर्शाया गया है।

वृन्दावनलाल शर्माजी ने ऐतिहासिक एवं सामाजिक नाटकों में नारी के विविध चित्र खींचे है। " राखी की लाज ", " मंगलसूत्र ", " पायल ", " देखा-देखी ", " कनेर ", " नीलकंठ ", विस्तार आदि नाटकों में उन्होंने नारी का प्रेम, मातृत्व एवं सामाजिक विसंगतीयों से जूझती नारी को चित्रित किया है। राम्कुमार वर्मा का प्रवास भी इस दिशा में उचित रहा। " चारूमित्रा " इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है।

आधुनिक नाटककारों में " भुवनेश्वर " का नाम भी उल्लेखनीय है। " स्ट्रइक " में पति पत्नी एक साथ रहकर भी उनके सम्बन्ध सूत्र टूट जाते हैं। जगदीशचंद्र माथुर ने नाटकों में नारी को प्रेमिका एवं प्रेमिका रूप में चित्रित किया है। " भोर का तारा " में नारी का यहीं रूप उभरा है।

डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल में अपने नाटकों में नारी के विविध रूप चित्रित किये है। " मादा कैक्टस " में चित्रकार के जीवन से निर्वासित पत्नी और मेहबूबा का उपेक्षित रूप है। " रातरानी " में पुरूष पर विजय पानेवाली विजयिनी नारी का चित्र प्रस्तुत हुआ है। " तीना आँखोवाली मछली ", " सूखा सरोवर ", " दर्पण " इनके ऐसे नाटक है जिनमें नारी के विविध रूपों का चित्रांकन हुआ है।

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी नाटककारों में मोहन राकेश, सुरेन्द्र वर्मा आदि नाटककारों का विशेष महत्त्व है। उन्होंने अपने नाटकों में नारी पात्रों को यथार्थवाद की भावभूमि पर तथा मनोविज्ञान के धरातलपर चित्रित किया है। मोहन राकेश के आषाढ़ का एक दिन की नायिका मल्लिका यद्यपि एक भावुक नारी पात्र है फिर भी मनोविज्ञान के परिप्रेक्ष्य में उसका दुख दर्द टीस कराह और प्रेम भावना मनोविज्ञान के धरातल पर आज की नारी की कथा-व्यथा है। इस नाटक की अम्बिका ठोस यथार्थवादी नारी है जो आर्थिक विषमता के कारण बहुत दु:खी दिखायी गयी है। आधे-अधूरे नाटक की नायिका सावित्री (स्त्री) एक कामकाजी महिला है और उसे नाटककार ने एक खंडीता तथा अपरिमित कामासक्त नारी के रूप में चित्रित किया है। आज के परिवारीक विघटन का सावित्री मानों केंद्रबिंदू है।

सुरेन्द्र वर्मा ने " द्रौपदी " नाटक में आज की नारी की दुर्गती को चित्रित किया है कि आज की

नारी द्रौपदी के समान अपने पति के पाँच अलग अलग रूपों का मुकाबला करती रहती है। इस नाटक का " सुरेखा " पात्र आधुनिक द्रौपदी का प्रतीक है। " सूर्य की अन्तिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक " नाटक में सुरेन्द्र वर्मा ने शीलवती नारी पात्र को मनोविज्ञान के परिप्रेक्ष्य में नपुंसक पति के पत्नी की सेक्स के बारे में व्याकुलता छटपटाहट आदि मानसिक द्वंद्व को चित्रित करके दमित नारी की कामवासना को आखिर में एक भोग्या के रूप में चित्रित करके यह बताया है कि आज की नारी मातृत्व की अपेक्षा केवल " सेक्स " को ही सर्वस्व मानती है। इस प्रकार सुरेन्द्र वर्मा ने नारी के आधुनिक रूपों को रूपायित किया है।

विष्णु प्रभाकर के नाटकों के नारी-पात्र :

विष्णु प्रभाकर वास्तव में मानवतावादी और राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना के सजग कलाकार है। उनके नाटक साहित्य का अध्ययन करने पर यह दिखायी पड़ता है कि उन्होंने अपने नाटकों में नारी के विविध रूपों को चित्रित किया है। उनके नाटकों के नारी पात्र मुख्यतया आदर्शवादी और यथार्थवादी दीख पड़ते हैं। आदर्शवाद और यथार्थवाद के परिप्रेक्ष्य में विष्णु प्रभाकर के नाटकों के नारी पात्र के विविध रूप हमारे सामने आते हैं। नारी की महत्ता तथा उसका क्रियाव्यापार ध्यान में रखकर विष्णु प्रभाकर के नाटकों के नारी पात्रों का अध्ययन प्रस्तुत करना हमारा उद्दिष्ट है। इस दृष्टि से उनके नाटकों के नारी पात्रों का वर्गीकरण इस प्रकार करने का हमारा प्रयास है।

अ) आदर्श नारी पात्र :

1) आदर्श पारिवारिक नारी पात्र: माता, बेटी, बहू, बहन, प्रेमिका, पत्नी इ.

2) आदर्श देशप्रेमी नारी पात्र

3) आदर्श कलाकार नारी पात्र

4) आदर्श भिक्षुणी नारी पात्र

आ) यथार्थवादी नारी पात्र :

1) व्यावसायिक नारी पात्र

2) विद्रोही नारी पात्र

3) स्वच्छंद नारी पात्र

4) अत्याधुनिका नारी पात्र

5) परित्यक्ता नारी पात्र

6) अन्धविश्वासी नारी पात्र

7) अन्य नारी पात्र।

निष्कर्श :-

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि :-

(1) साहित्य की अन्य विधाओं (काव्य, कहानी, उपन्यास, निबंध, जीवन, संस्मरण आदि) की अपेक्षा नाटक सम्प्रेषण तथा प्रभावान्विति का सबसे बडा सशक्त माध्यम है।

(2) साहित्य मानव जीवन के गत्यात्मक सौंदर्य की भावात्मक अभिव्यक्ति है। उसका केंद्रबिंदु मानव है और इस दृष्टी से साहित्य में पात्रों का विशेष महत्व है।

(3) नाटक रंगमंचीय विधा होने के कारण उसमें पात्र और चरित्र-सृष्टि अपना विशिष्ट महत्व रखते है। नाटक के पात्र अधिक सजीव और सशक्त होते है।

(4) नाटककार अपने नाटक में पात्रों का चरित्र-चित्रण मनोविज्ञान के धरातल पर करता है और पात्र की विभिन्न मानसिक दशाओं तथा द्वंद्व को रेखांकित करता है।

(5) नाटक के पात्रोंके चरित्र-चित्रण में भाषा और संवाद विशेष सहायक होते है।

(6) नाटकीय पात्र सही अर्थ में रंगमंच पर ही साकार होते है।

(7) नाटक की पात्र-परिकल्पना पर भारतीय एवं पाश्चात्य आचार्यों ने काफी सोच-विचार करके नायक-नायिका भेद को प्रमुखता दी है।

(8) आधुनिक हिन्दी नाटककारोंने अपने नाटकों में नारी पात्र को विशेष स्थान दिया है।

(9) विष्णु प्रभाकर के नाटकों के नारी पात्र बहुआयामी है।

संदर्भ –

1. नाटयशास्त्र – भरतमुनी 11 1.114 11
2. साहित्यिक निबंध – राजनाथ शर्मा पृ.530 संस्क. 1965
3. पृथ्वी का स्वर्ग –(भूमिका) – डॉ.रामकुमार वर्मा पृ.7 संस्क. 1984
4. स्वातंत्रोत्तर हिन्दी नाटकोंका सांस्कृतिक अध्ययन – डॉ.गजानन सुर्वे पृ.25 संस्क.1987
5. संस्कृत हिन्दी कोश– वामन शिवराम आगटे पृष्ठ 603 दि.संस्क.1969
6. मालक हिन्दी कोश –(तिसरा खंड) –प्र.संम्पा.राचंद्र वर्मा पृ.473 संस्क.1964
7. आधुनिक हिन्दी नाटक: चरित्र सृष्टीके आयाम – डॉ.लक्ष्मी राय पृ. 40 संस्क. 1989
8. साहित्यका उद्देश – प्रेमचंद– पृ. 54
9. साहित्य में पात्र: प्रतिमान और परिलेखन – डॉ.रामशंकर त्रिपाठी पृ.39 संस्क.1987
10. *An Introduction to the study of literature-W.H.Hindson Page-186*
11. हिन्दी नाटकमे पात्र – कल्पना और चरित्र चित्रण– सुरजकान्त शर्मा पृ.73 संस्क.1975
12. अरस्तू का काव्य शास्त्र – डॉ.नगेन्द्र पृ.22 – संस्क.
13. *Elements of Drama-J.L.Satyan Page-165 P.1960*
14. *Personality is the Aynamic Organisation with in individual of those psychophysical system that determine the unique adj.to his environment.*
15. साहित्यका श्रेय और प्रेय – जैनेद्रकुकुमार पृ.164 संस्क 1961
16. *The Art of Dramatic writing -Lajos Egri. P.33-37*
17. वहीं – पृ.37
18. वहीं – पृ.177
19. आधुनिक हिन्दी नाटक: चरित्र सृष्टि के आयाम – डॉ.लक्ष्मी राय पृ.50 प्रथम संस्क.1979
20. पृथ्वीका स्वर्ग (भूमिका) – डॉ. रामकुमार वर्मा पृ.9,10 संस्क. 1984
21. साहित्य सहचर – आचार्य हजारी प्रसाद दिवेदी पृ. 112 संस्क.1968
22. आधुनिक हिन्दी नाटक: चरित्र सृष्टि के आयाम – डॉ.लक्ष्मी राय पृ.55 संस्क.1989
23. दशरूपक – धनंजय (1.11)

    " वस्तु नेता रसस्तेषाम भेदक: ।
24. नाटयशास्त्र – भरतमुनी (24 / 21.24)
25. दश रूपक – धनंजय 2.1,2

26. भरत और भारतिय नाटय कला , डॉ.सुरेन्द्रनाथ दिक्षीत पृ.196

27. नाटय दपर्ण – रामचंद्र गुणचंद्र पृ.173

28. दशरूपक – धनंजय .2/15

29. वही " "

30. वही – " 2/16

31. वही – " "

32. दशरूपक – धनंजय 2/28

33. वही – " 2/20

34. वही – " 2/23ख

35. नाटयशास्त्र – भरतमुनी 22/102 से 143

36. आधुनिक हिन्दी नाटक : चरित्र सृष्टके आयाम–लक्ष्मी राय पृ. 30 प्र.संस्क.1979

37. *Aristotle's Theory of Poetry & Fine Arts -S.H.Butcher P.313-315*

38. वही पृ.118

39. *Comedy-M.J.Potts Page 115 Pub.1948*
The characters of comedy are not superhuman or sub human but on a level with the generality of mankind.

40. साहित्यमें पात्र :प्रतिमान और परिलेखन– डॉ.रामशंकर त्रिपाठी पृ.121 संस्क 1987.

41. जयशंकरप्रसाद : वस्तु और कला – डॉ.रामेशलाल खंडेलवाल पृ.140 संस्क. 1968.

42. आधुनिक कथा साहित्य और चरित्र विकास– डॉ.बेचैन पृ. 66 संस्क.1965

43. जायसि ग्रंथावली (भूमिका) – आचार्य रामचंद्र शुक्ल पृ. 149 संस्क.

44. जयशंकर प्रसाद : वस्तू और कला – डॉ.रामेश्वरलाल खंडेलवाल पृ.140 संस्क.1968.

45. सात्तोत्तर हिन्दी उपन्यासोमें नारि के विविध रूप – डॉ.विमला शर्मा पृ.7 संस्क. 1987

46. प्रसाद के नाटको के नारि पात्र – डॉ.श्रीमती मुकुलराणीं सिंह पृ. 20 प्र. संस्क.1991.